# संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 5 | पृष्ठ : 16 | दिसंबर 2011 | नयी दिल्ली


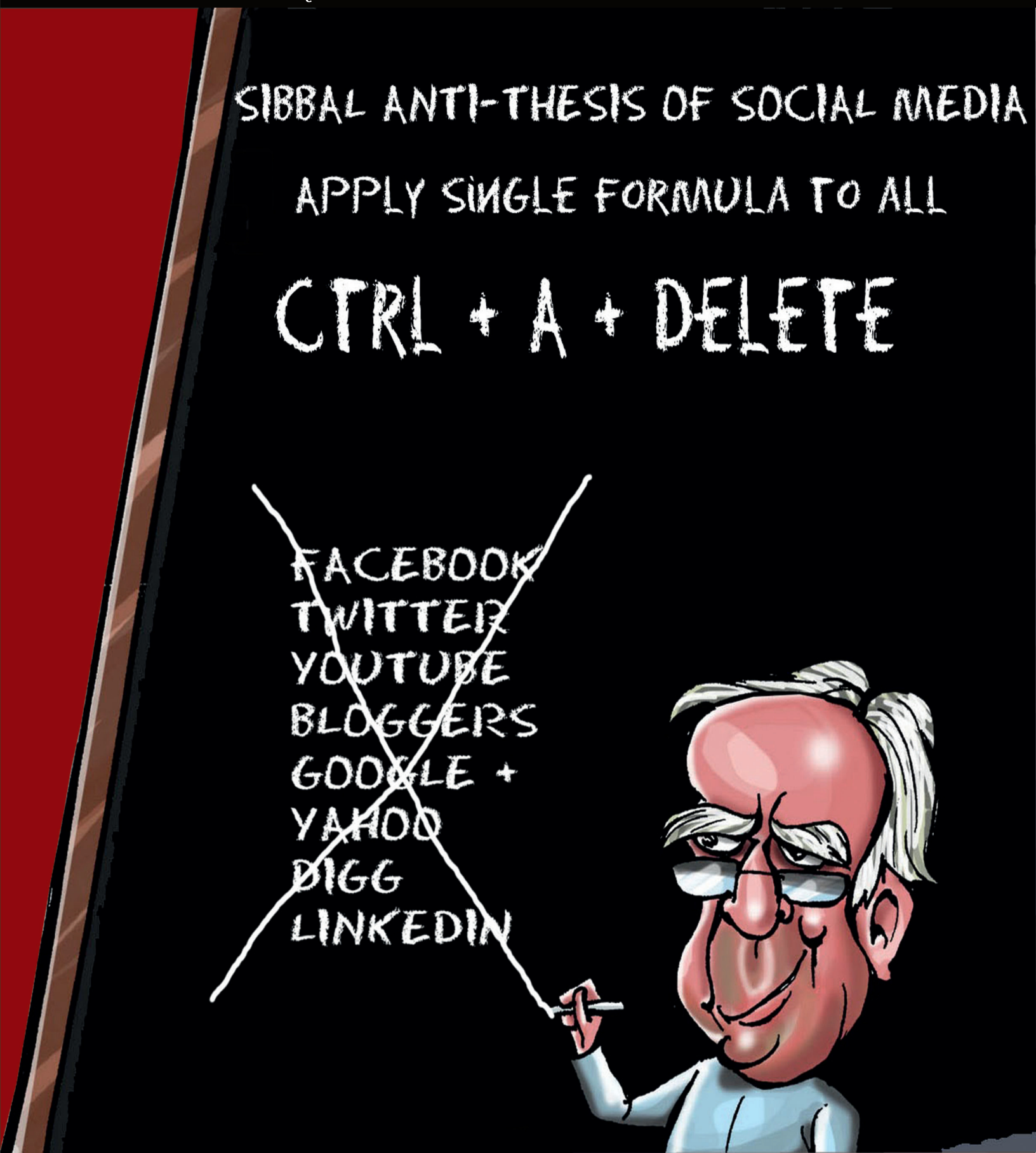

# संवादसेतु

**संपादक**
आशुतोष

**संपादक मंडल**
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

**कार्यालय**
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

**संपर्क:**
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com


## अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।


'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।


# अनुक्रमणिका


संपादकीय 2

आवरण कथा
सोशल मीडिया की निगरानी 3

न्यू मीडिया
वर्चुअल दुनिया में ट्विटर 5

चौथा स्तंभ
स्वर्ग की संरचना और विकास की सरपट दौड़ 6

विचार
पत्रकारिता में मानदंडों का अभाव – अज्ञेय 8

साक्षात्कार
मीडिया से मल्टी–मीडिया बनी पत्रकारिता : बलदेव भाई 9

श्रद्धा सुमन
हिंदी पत्रकारिता के उन्नायक मदन मोहन मालवीय 11

परिचर्चा
चौथे स्तम्भ की नींव – पत्रकार या रोबोट 12

शोध
ग्रामीण विकास में रेडियो कार्यक्रमों का प्रभाव 13

लेख
मजीठिया बनी प्रेस मालिकों के गले में फंसी हड्डी 14

युद्धाय कृतनिश्चयः 15

मीडिया शब्दावली 16

एक वकील रहा तो एक न्यायाधीश। पहले की गलत बात को भी तर्कों से सही साबित करने में महारत तो दूसरे का बात कहने का अंदाज भी फैसले जैसा। पहला पेशे की प्रतिबद्धता इसी को मानता है कि चोर को भी शाह साबित कर दे और दूसरे का मानना है कि उसका लिखा वाक्य ही अंतिम है।

बात मार्कण्डेय काटजू और कपिल सिब्बल की हो रही है। एक प्रेस कौंसिल के अध्यक्ष हैं तो दूसरे संचार मंत्री। मीडिया का दुर्भाग्य यह कि वह दोनों के बीच फुटबॉल बन कर पड़ी है। कभी यह लतियाता है तो कभी वह। स्व. श्रीलाल शुक्ल ने राग दरबारी में लिखा है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है जिसे कोई भी लात मार सकता है। वही आज मीडिया के बारे में सच हो रहा है।

काटजू और सिब्बल का लतियाना इसलिये चर्चा में है क्योंकि वे बड़े ओहदे पर बैठे हैं। उनका पद न केवल मीडिया से ताल्लुक रखता है बल्कि मौका पड़ने पर मीडिया की बांह मरोड़ने का हक भी रखता है। हालांकि मीडिया के बड़े लोग यही कोशिश करते हैं कि इन पदों पर कोई ऐसा आदमी विराजे जो या तो बिल्कुल गऊ छाप हो अथवा 'मैं भी तेरी नहीं कहूंगा, तुम भी मेरी मत कहना' के सिद्धान्त पर विश्वास करता हो।

शुरुआत मीडिया ने की। अगर उसे पेड न्यूज और एडवर्टोरियल जैसे धंधे करने थे और लोकसभा–विधानसभा के प्रत्याशियों को प्रचार के पैकेज बेचने थे तो चालू सिद्धान्त के अनुसार सरकार के मामलों में उसे खामोशी बरतनी थी। लेकिन उसने अपने प्रभाव का दुरुपयोग करते हुए सरकार पर दबाव बनाने की कोशिश की। प्रधानमंत्री तो 'अर्थशास्त्री' हैं। हर दबाव का 'अर्थ' समझते हैं। इस दबाव का 'अर्थ' भांपते हुए उन्होंने दोनों पदों पर मीडिया की मांग (संदर्भ–मनचाहे आदमी को संचारमंत्री बनवाने का बरखा अभियान) को नकारते हुए दोनों पदों पर ऐसे लोग बिठा दिये जो मीडिया को निपटा तो नहीं सकते लेकिन उसकी फजीहत जरूर कर सकते हैं।

मीडिया की गत रास्ते पर पड़ी कुतिया की तरह बनाने में मीडिया के तथाकथित दिग्गजों का बड़ा योगदान है। उन्होंने मीडिया के विचार और संस्थाकेन्द्रित स्वरूप को बदल कर व्यक्तिकेन्द्रित बना दिया और स्वयं उसके ठेकेदार बन गये। नतीजा यह हुआ कि सिब्बल और काटजू ही नहीं आम आदमी भी मीडिया को लतियाने लगा। पान और नाई की दुकान से लेकर फेसबुक और ट्विटर तक यह फुटबॉल मैच लोगों का मनोरंजन करने लगा।

विडंबना यह है कि बड़े राजनेताओं की तरह ही बड़े पत्रकार भी आम नागरिक से कट गये हैं। जमीन पर क्या चल रहा है इससे या तो उनको कोई सरोकार नहीं बचा अथवा सारी चिन्ता त्याग कर वे व्यक्तिकेन्द्रित हो गये हैं। अनेक बार वातानुकूलित स्टूडियो में चल रहे पैनल डिस्कशन में नकली गर्मी दिखाते हुए यह पत्रकार कम और कभी खलनायक तो कभी विदूषक ज्यादा लगते हैं।

सत्ता भ्रष्ट होती है और जरूरत होने पर उससे टकराना, यह मीडिया की जिम्मेदारी है। सत्ता में बैठे लोग मीडिया से नाराज है, कुचलने की कोशिश में है, यह भी स्वाभाविक ही है। लेकिन आम नागरिकों का विश्वास आज मीडिया से क्यों उठता जा रहा है इसकी चिन्ता अगर समय रहते नहीं की गयी तो यह देश, समाज और मीडिया, किसी के भी हित में नहीं होगा। मीडिया के कथित ठेकेदारों की अपनी मजबूरियां हो सकती हैं, लेकिन जिन पत्रकारों ने अपने हित सत्ता या बाजार के पास बंधक नहीं रखे हैं, उनकी चुप्पी मीडिया के लिये खतरनाक है, आपराधिक है।

भवदीय

संपादक

# सोशल मीडिया की निगरानी

## संवादसेतु विशेष

सोशल मीडिया ने भारतीय मीडिया जगत में अपना एक स्थान बना लिया है। कभी–कभी तो लगता है कि वह पारंपरिक मीडिया को पीछे छोड़ चुकी है और जल्द ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के स्वप्निल संसार को छोड़ कर आगे निकल जायेगी।

उसकी यह संभावना और लोगों तक सीधी पहुंच केवल सत्ताधारी ही नहीं बल्कि उन लोगों को भी चिंतित किये हुए है जो जनमत को अपनी ताल पर थिरकते देखना चाहते हैं। लोकतंत्र होते हुए भी भारत में अंग्रेजों के बनाये कानूनों की आड़ में सूचनाओं को छापने और छिपाने का खेल आजादी के बाद भी दशकों तक चला है।

जूलियस असांजे ने सूचनाओं को फाइलों की गिरफ्त से निकाल कर लोगों तक पहुंचाने का काम किया तो तमाम सरकारें उसके खिलाफ खड़ी हो गयीं, लेकिन असांजे के इस दुस्साहस ने गली–मुहल्ले में ऐसे किशोरों की फौज खड़ी कर दी जो अपने हाथ लगी नन्हीं सी जानकारी को भी इंटरनेट के माध्यम से दुनिया भर में बांटने को मचल उठे।

सरकार ने अपनी पारदर्शिता साबित करने के लिये जो टोटके अपनाये उनमें से एक सूचना के अधिकार का भी है। यह कदम उसने पेशेवर आंदोलनकारियों के दबाव को कम करने के लिये उठाया था। कानून बनने पर इन आंदोलनकारियों में से ही कुछ आयोगों में जगह पा गये और शेष सूचना अधिकार के कार्यकर्ता बन गये। कुछ मीडिया संस्थानों ने भी इसे खबर के उत्पादन का आधार बनाया और देखते ही देखते यह धंधा भी चल निकला।

जिज्ञासा वह तत्व है जिसने मनुष्य को पशुतुल्य जीवन से उठाकर विकास के इस स्तर तक पहुंचाया। यही जिज्ञासा ज्ञान–विज्ञान और यहां तक कि मीडिया के जन्म का आधार बनी। अपने आस–पास हो रही घटनाओं की जानकारी और उस पर विशेषज्ञों की टिप्पणियां पाने के लिये लोगों ने समाचार पत्रों का सहारा लिया। दूर–सुदूर की जानकारी पाने की पाठक की इच्छा ने संवाद समितियों के गठन की आवश्यकता उत्पन्न की।

रेडियो के आविष्कार ने सूचना प्रेषण को नये आयाम दिये। द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद सूचना और मनोरंजन का प्रमुख साधन रेडियो बना।

टेलीविजन ने दृश्यों का एक स्वप्निल संसार मनुष्य के सामने प्रकट किया। अब वह सूचनाओं को पढ़ अथवा सुन ही नहीं बल्कि देख भी सकता था। अमेरिका द्वारा ईराक पर आक्रमण का साक्षात दर्शन, ट्विन टॉवर और मुंबई पर हमले के दृश्य आज भी दर्शकों के जेहन में ताजा हैं। वस्तुतः आतंक को जिन्होंने प्रत्यक्ष नहीं देखा उन्हें आतंकवाद की विभीषिका का परिचय इन घटनाओं के टेलीविजन पर सीधे प्रसारण से ही मिला।

संवाद एक दिशा में नहीं होता। व्यक्ति जहां सारी दुनिया की जानकारी चाहता है वहीं यह भी चाहता है कि उसकी अपनी समस्या अथवा सूचना को भी मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया जा सके। मीडिया से पाठक अथवा दर्शक तभी जुड़ाव अनुभव करता है जब उसे लगता है कि उसकी अपनी समस्या, चिन्ता अथवा सूचना ही उसकी विषयवस्तु है।

पिछले कुछ वर्षों में मीडिया का फोकस आम आदमी से हटा है। इसका खास कारण है बाजार के साथ उसकी संलग्नता। मीडिया ने अपनी ताकत को बाजार के सुपुर्द कर दिया है और बाजार उसका मनमाना उपयोग कर रहा है। दूसरी ओर बाजार ने सरकारों को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। आज सत्ता के शिखर पर बैठे लोग भी बाजार की भाषा और मुहावरों में बात करते देखे जा सकते हैं।

परिणामस्वरूप, सरकार और मीडिया, दोनों के फोकस में बाजार आ गया और आम आदमी उससे बाहर हो गया। यह स्थिति इलेक्ट्रॉनिक तथा अंग्रेजी मीडिया में अधिक तथा हिन्दी और भाषायी समाचार पत्रों–पत्रिकाओं में तुलनात्मक रूप से कम थी। किन्तु हिन्दी के पाठकों की अपेक्षा भी अधिक थी जिसके कारण मीडिया का सरोकारों से कटना उसके पाठकों को नहीं भाया।

खबरों से विस्थापन का यह दंश नागरिक को वर्षों से बेचैन किये हुए था। हालात यहां तक जा पहुंचे कि पत्रकार भी अपने ही प्रकाशन में अपनी बात लिखने से वंचित हो गये।

इस बेचैनी को निकलने का मार्ग मिला जब वेब मीडिया का प्रादुर्भाव हुआ। सबसे पहले पत्रकारों की नयी पीढ़ी ने इसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और बाद में बड़ी संख्या में नागरिक भी इससे जुड़ते गये। पहले ब्लॉग और उसके बाद ऑरकुट, फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की असीम संभावनाओं के द्वार खोल दिये। बेहद कम समय में बहुत अधिक लोकप्रियता पाने का कारण था इसका सस्ता और सर्वसुलभ होना। साथ ही यह ऐसा माध्यम बन गया जिसमें बतकही के लिये पूरी गुंजाइश थी, भाषा और भावों का, छन्द और व्याकरण का कोई बन्धन न था।

मीडिया में छपने वाले आंकड़ों में देश की सुनहरी तस्वीर और मजबूत होती अर्थव्यवस्था की खबरें छपती थीं तो मंहगाई से जूझ रहा नागरिक यह संदेह तो करता था कि कहीं–न–कहीं दाल में काला है किन्तु कसमसाने के अलावा कुछ भी कर सकना उसके लिये असंभव था। लेकिन सोशल मीडिया में अपनी बात कहने के साथ ही अपने विचार से सहमत लोगों को ढूंढ़ निकालना भी अत्यंत सरल हो गया।

जल्दी ही राष्ट्रीय मुद्दों पर समान रूप से सोचने वाले लोगों की गोलबंदी होने लगी और सोशल मीडिया एक आंदोलन का आधार बन गया। सोशल मीडिया के माध्यम का उपयोग कर मध्य एशिया के देशों में परिवर्तन की जो लहर चली उसने दुनिया भर की सरकारों को चौकन्ना कर दिया। भारत सरकार भी उस पर प्रभावी नियंत्रण की योजना बनाती इससे पहले ही अन्ना की टीम ने इसका पहला सफल प्रयोग किया। जंतर–मंतर पर अन्ना के पहले प्रदर्शन के बाद हुए रामदेव के आंदोलन को सरकार ने जिस तरह कुचलने की कोशिश की उससे रामलीला मैदान में अन्ना के अनशन को धार मिली। रामदेव के समर्थकों पर हुई हिंसा के विरोध में सोशल मीडिया पर टिप्पणियों की बाढ़ आ गयी। यही बाढ़ बाद में अन्ना के समर्थन में तब्दील हो गयी।

अब जबकि अन्ना की टीम ने सरकार को दोबारा घेरने की कोशिश शुरू कर दी है, सरकार चाहती है कि सोशल मीडिया की मुश्कें कुछ इस तरह कस दी जायें ताकि आने वाले समय में वह अन्ना के लिये प्लेटफॉर्म न बन सके।

इसी कवायद का एक हिस्सा था संचार मंत्री सिब्बल द्वारा सोशल मीडिया साइट के संचालकों को बुला कर दी गयी घुड़की। चिन्ता की बात यह है कि इन साइट संचालकों ने भारत में इसकी चर्चा भी नहीं की। न ही मंत्रालय के भीतर की हलचल सूंघने वाले खोजी खबरियों ने इसे छापा। वाशिंगटन पोस्ट में छपने के बाद भारत की मीडिया में इस पर बवाल मचा।

सोशल साइटों पर लगाम लगाने की सिब्बल की कोशिश को व्यक्तिगत प्रयास नहीं बल्कि सरकार की नीति ही मानना चाहिये। यद्यपि सिब्बल द्वारा उठाये गये प्रश्नों को भी महत्व दिया जाना चाहिये। उनके द्वारा उठाये गये नैतिकता और मूल्यों के सवाल नकार दिये जाने योग्य नहीं हैं और उन पर गंभीर चिंतन आवश्यक है। किन्तु यह कवायद तब अर्थ खो देती है जब लगता है कि यह सरकार की ईमानदार कोशिश के बजाय नागरिकों की जबान बंद करने का प्रयास अधिक है।

सोनिया गांधी के जिस चित्र को उन्होंने लहराते हुए सोशल साइट संचालकों को चेतावनी दी वह उतना अधिक वीभत्स तो नहीं था जितना हिन्दू देवियों का एमएफ हुसैन द्वारा बनाया गया चित्र। लेकिन हुसैन के चित्र सरकार की नैतिकता को जगाने में विफल रहे थे। इससे लगता है कि सरकार इसे तूल देकर अन्ना के आंदोलन का गला घोटना चाहती है।

यदि सरकार को लगता है कि वह इसमें सफल हो सकेगी तो इसकी संभावना बेहद कम है। इसलिये नहीं कि पूरा देश अन्ना के समर्थन में आ खड़ा हुआ है अथवा मध्य एशिया के देशों की तरह क्रांति पर उतर आया है, बल्कि इसलिये, क्योंकि मीडिया और सरकार की लगातार बेरुखी के बाद आम नागरिकों के हाथ एक ऐसा माध्यम आया है जहां उनकी समस्याओं का हल नहीं है लेकिन कम से कम बिना किसी प्रतिबंध के अपनी बात कह सकने की आजादी तो है। ■

# वर्चुअल दुनिया में ट्विटर

वंदना शर्मा

इंटरनेट पर 140 अक्षरों की दुनिया यानि 'ट्विटर' से आज के समय में कोई भी अनजान नही है। ट्विटर ने अपने उन सभी उपयोगकर्ताओं को एक मंच दिया जो कम समय और कम शब्दों में अपनी बात सबके बीच साझा करना चाहते थे। ट्विटर की शब्द सीमा कम होने के कारण ही इसे दूसरा नाम 'माइक्रोब्लॉगिंग' दिया गया।

ट्विटर को अपनी सेवा देते हुए अभी महज 5 साल बीते हैं बावजूद इसके, ट्विटर के उपयोगकर्ताओं की संख्या लगभग 200 करोड़ पहुंच गई हैं। इंटरनेट की पहुंच बढ़ने के साथ–साथ बड़ी तेजी से इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या में इजाफा होता जा रहा है। ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक दिन लगभग 1.6 करोड़ ट्वीट किये जाते हैं। वर्ष 2006 में जैक डॉसी (संस्थापक) ने इस बहुभाषी सोशल नेटवर्किंग साइट को लोगों के नाम किया था।

ट्विटर पर समय की मांग को देखते हुए सभी प्रतिष्ठित लोग या नेता– अभिनेता और समाजसेवी अपनी बात रखने लगे हैं। शायद ही कोई बड़ी और चर्चित हस्ती होगी जिसका ट्विटर अकाउंट न हो, ऐसा माना जाने लगा है कि ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट पर अकाउंट होने से इन हस्तियों को अपने प्रशंसकों के बीच ज्यादा लोकप्रियता हासिल हो सकती है। जहां विदेशों में ओबामा, ओपराह विनफ्रे, ब्रिटनी स्पेयर्स, शकीरा जैसी हस्तियों के द्वारा किये गए ट्वीट्स को सबसे अधिक लोकप्रियता मिलती है तो वहीं भारत में अमिताभ बच्चन ट्विटर पर अपने दादा होने की खुशी बांटते हैं। सचिन तेंदुलकर अपने फैन्स द्वारा दी गई शुभकामनाएं बटोरते हैं। लता जी हर मैच के बाद क्रिकेट टीम को जीत की बधाईयां देती हैं तो प्रियंका चोपड़ा अपने फैन्स सबसे अधिक होने के कारण ट्विटर पर हर महीने फॉलोअर्स की संख्या उछालती हैं।

इस वर्चुअल युग में ट्विटर से ही मीडिया को बहुत सी खबरें नसीब हो जाती हैं। किरण बेदी का ट्वीट हो या नरेन्द्र मोदी का, खबरें सब पर बनती हैं। वहीं शशि थरूर द्वारा 2009 में किया गया उनका 'कैटल क्लास' ट्वीट उन पर कुछ ज्यादा ही भारी पड़ गया था। यहां तक कि विरोध के चलते पद से भी हटना पड़ा।

ट्विटर के जरिये इसके उपयोगकर्ता उन सबसे खुद को जोड़ पाते हैं जिनके बारे में जानने को वह उत्सुक रहते हैं। अक्सर देखा गया है कि मीडिया के कुछ नौसिखिये अपनी खबर को चटपटी बनाने की जुगत में नेता–अभिनेताओं के बारे में कुछ भी दिखाते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि ट्विटर पर आम लोग इनके फॉलोअर बन अपने पसंदीदाओं के बारे में स्वयं जान सकते हैं।

ट्विटर आम लोगों में भी अपने दोस्तों या अन्यों से अपनी बात और विचार साझा कर उनसे जुड़ने का एक खासा लोकप्रिय माध्यम बन चुका है। हाल ही में हुए अन्ना के आंदोलन में जब अन्ना की गिरफ्तारी हुई तो फिल्मी सितारों के साथ–साथ सभी समर्थकों ने ट्विटर पर इसका विरोध जताया।

इसी वर्ष मई में हुई ओसामा बिन लादेन की मौत को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। पाकिस्तान के एबटाबाद में (जहां लादेन को मारा गया) बैठे शोएब अतहर नाम के व्यक्ति ने अनायास ही तुरंत हमलों की जानकारी देनी शुरू कर दी थी। जबकि इसके कई घंटों बाद यह जानकारी मीडिया को मिली।

यदि इस घटना को ट्विटर का सकारात्मक पहलू माना जाए तो हाल ही में, किसी अज्ञात व्यक्ति ने अमिताभ बच्चन की ट्विटर पर नकली आईडी बना उस पर अभिनेता शाहरूख खान की हालिया रिलीज फिल्म 'रा–वन' की आलोचना की। अमिताभ बच्चन के साथ घटी घटना को ट्विटर के एक नकारात्मक पहलू के रूप में देखा जा सकता है जब उन्हें खुद आगे आकर सफाई देनी पड़ी। इससे पहले भी कई बार ऐसा हुआ है। एप्पल जनक स्टीव जॉब्स की असल में मृत्यु होने के कई माह पहले ही किसी शरारती तत्व द्वारा उनकी मौत की झूठी खबर उड़ाई गई थी।

ट्विटर पर हर दिन बढ़ती लोगों की प्रतिक्रियाओं को देखते हुए वैश्विक स्तर पर इसके दो रूप सामने आए। पहला, चीन ने अपने देश की जनता को अन्य देशों के लोगों के साथ मिलकर लोकतंत्र की आवाज़ उठाते देख उसे पहले ही दबा दिया। यह लोकतंत्र का अलोकतांत्रिक विरोध था या कुछ और? पर 2009 में ट्विटर पर लगा यह प्रतिबंध अभी तक कायम है। दूसरा, जहां तालिबान ने अफगानिस्तान में फिल्मों, संगीत, टीवी या अन्य प्रसारण पर बैन लगाया वहीं तालिबान खुद ट्विटर पर आ गया। मई 2011 में तालिबान ने अपने देश से पहला ट्वीट किया।

ट्विटर का जादू एक तरफ लोगों को अपने विचार साझा करने में चला है तो दूसरी ओर सितारों के लिए यह कमाई का जरिया बना है। फिल्मी सितारे ट्विटर पर अपने प्रशंसकों के संपर्क में रहने के साथ–साथ अपने प्रायोजित ट्वीट्स से मोटी रकम भी पा रहे हैं। अक्सर देखा जाता है कि लोग वैसी चीजें पसंद करना शुरू कर देते हैं जैसी उनके पसंदीदा सितारे इस्तेमाल करते हैं। इसलिए सितारे अपने ट्वीट्स में किसी खास ब्रांड का नाम ले तारीफ करते हैं जिससे संबंधित ब्रांड उन्हें अपने इस विज्ञापन के लिए अच्छे पैसे देता है। कुछ मामलों में तो 71 डॉलर प्रति अक्षर की दर से इन्हें भुगतान किया जाता है। कंपनियां खुद यह दावा करती हैं कि ये प्रायोजित ट्वीट्स उन्हें टीवी या अखबार के विज्ञापन से अधिक सस्ते पड़ते हैं। ऐसा माना जा रहा है कि प्रायोजित का प्रचलन भारत में भी होने लगा है जो अब तक विदेशों तक सीमित था। भारतीय अभिनेत्री लारा दत्ता को एक प्रायोजित ट्वीट के लिए 3200 डॉलर मिलते हैं।

आजकल फिल्मों के प्रमोशन में भी संबंधित सितारे और निर्माता अपनी फिल्म के लिए आम लोगों से इसे देखने की अपील करते हैं। इसी तरह सलमान रूश्दी या चेतन भगत जैसे लोकप्रिय लेखक भी अपनी नई किताबों का प्रचार ट्विटर के माध्यम से करने लगे हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि सोशल नेटवर्किंग साइट ट्विटर युवाओं को सबसे अधिक लुभा रही है। भारत में अभी इसके उपयोगकर्ता बहुत ज्यादा संख्या में नहीं हैं। ट्विटर के कुल उपयोगकर्ताओं में से केवल 6.4 प्रतिशत ही भारतीय हैं। कुछ देशों में यह अब तक प्रयोग में नहीं है लेकिन संभावना है कि आने वाले वर्षों में इसके उपयोगकर्ताओं में भरपूर इजाफा होगा। ■

# स्वर्ग की संरचना और विकास की सरपट दौड़

जयप्रकाश सिंह

स्वर्ग एक स्वप्निल संसार है। सभी सुख सुविधाओं से युक्त और रोजमर्रा की खटपट से मुक्त जीवनयापन की एक आदर्श व्यवस्था। स्वर्ग विकास प्रक्रिया की चरम अभिव्यक्ति है। स्वर्ग से जुड़ा एक मजेदार तथ्य यह भी है कि सम्पूर्ण मानवता आज तक किसी सार्वभौमिक स्वर्ग का निर्माण नहीं कर सकी है। दुनिया के अलग–अलग हिस्सों के आकाश में स्वर्ग के अलग–अलग मॉडल काम करते हैं। धार्मिक साहित्य में स्वर्ग की अलग–अलग कल्पनाएं मिलती हैं। स्वर्गों का तुलनात्मक विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि उनकी अंतर्वस्तु में व्यापक भिन्नता है। तिब्बतियों के स्वर्ग में कभी भी ठंड नहीं पड़ती। उनका स्वर्ग एक वातानुकूलित अंतरिक्ष स्टेशन जैसा होता है। भारतीयों के स्वर्ग में शीतल मंद बयार बहती रहती है और स्वर्गवासी जीवों के पास अप्सराओं का नृत्य देखने के अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं होता। अरबों के स्वर्ग में विभिन्न लजीज व्यंजन वातानुकूलित परिवेश में उपलब्ध रहते हैं। स्वर्गों में यह असमानता भौगोलिक परिवेश के कारण पैदा हुई हैं। सभी स्वर्गों में भौगोलिक कठिनाईयों के लिए कोई स्थान नहीं होता। स्वर्ग की कल्पनाएं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विकास प्रक्रिया की भौगोलिक सीमाबद्धता की तरफ भी संकेत करती हैं और यह एक सत्य भी है कि विकास के मानक –स्वरुप और उसकी व्यवस्थागत अभिव्यक्ति को लेकर वैश्विक स्तर पर कभी भी सर्वसम्मति नहीं बन पायी है। कालप्रवाह किसी विशेष भूखण्ड के लिए प्रासंगिक विकास मॉडल को किसी अन्य भूखण्ड के लिए व्यर्थ साबित करता रहा है। इसी कारण समाज के व्यवस्थाकारों ने भी विकास की प्रक्रिया में 'स्थानीयता ' को एक चरम मूल्य माना और भूखण्ड विशेष में प्रकृति और प्रज्ञा के बीच संवाद से उत्पन्न मूल्यों के आधार पर विकास के स्थानीय पैमाने गढ़ने के प्रयास किए।

स्थानीयता और विकास मॉडल का यह सहज सम्बंध बाजारू वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण टूटने के कगार पर पहुंच गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सबसे बड़ी चुनौती स्थानीयता ही पेश करती है। यह चुनौती कभी स्वदेशी के रूप में, कभी भाषा और लोकसंस्कृति के संरक्षण तथा कभी स्थानीय रोजगार मुहैया कराने के लिए चलने वाले आंदोलनों के रूप में सामने आती है। इसी कारण वैश्वीकरण की प्रक्रिया 'स्थानीयता' के तत्व को एकसिरे से नकारने की कोशिश करती है। तथाकथित 'कॉस्मोपॉलिटन थिंकर' स्थानीय विशेषताओं और जरूरतों की चर्चा करने से भी परहेज करते हैं। स्थानीयता को संकुचित मानसिकता का पर्याय बनाने की कोशिशें होती हैं। वैश्वीकरण की वर्तमान प्रकिया की यह दृढ मान्यता है कि पूंजी, उत्पाद और सूचना के साथ व्यवस्थाओं का भी आयात–निर्यात किया जा सकता है। सबल की व्यवस्था सर्वत्र की व्यवस्था बनायी जा सकती है ।

स्थानीयता को हाशिए पर धकेलने की कोशिशें शीतयुद्ध काल से प्रारम्भ होती है। पूंजीवाद और मार्क्सवाद दोनों स्थानीय अद्वितीयता के सिद्धांत पर विश्वास नहीं करते। पूंजीवाद उपभोक्तावादी जीवनशैली को रोपने लिए, तो मार्क्सवाद अपनी विचारधारा को थोपने के लिए 'लोक व्यवस्था' ढहाते हैं। स्थानीयता से उपजे सांस्कृतिक मूल्यों का संहार करते हैं। लेकिन शीतयुद्ध के दौरान दोनों विचारधाराओं के संघर्षरत होने के कारण स्थानीयता के उन्मूलन की गति मंद थी। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद इस प्रक्रिया ने गति पकड़ी । मार्क्सवाद को जमींदोज करने के बाद अमेरिका और योरोपीय देश वैश्विक स्तर पर यह अवधारणा स्थापित करने में एक हद तक सफल रहे कि विकास का एक सार्वभौमिक मॉडल हो सकता है। वैश्विक वित्तीय संस्थाओं के सलाहकारों ने नीतिनियंताओं को समझाया कि उपभोक्तवादी जीवनशैली तथा बाजारवादी व्यवस्था इस विकास के वैश्विक मॉडल के आधार बन सकते हैं। संरचनागत समायोजन जैसी नीतियों के जरिए राष्ट्रीय सम्प्रभुता का अतिक्रमण किया गया। विश्व बैंक ,अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अमेरिकी मॉडल को पूरी दुनिया पर थोपने की कोशिश की। लगभग दो दशकों तक इस विकास मॉडल की विसंगतियों के खिलाफ उठने वाली हर आवाज को बड़ी सफायी के साथ दबा दिया गया और बाजारवादी तथा उपभोक्तावादी व्यवस्था का निर्यात पूरी दुनिया को अनवरत रूप से जारी रहा ।

2008 में आयी वैश्विक मंदी ने उपभोक्तावादी–बाजारवादी विकास की उत्कृष्टता और वैश्विक स्वीकार्यता पर पहली बार गंभीर सवाल खड़े किए। आर्थिक चिंतकों को यह अहसास हुआ कि अपनी जन्मस्थली में ही असफल साबित होने वाला यह विकास मॉडल पूरी दुनिया के लिए स्वीकार्य कैसे हो सकता है? 2011 की यूरोपीय मंदी ने इस विकास मॉडल की विसंगतियों और खतरों के बारे में फिर से पूरी दुनिया का ध्यान आकर्षित किया है। 'आक्यूपायी वालस्ट्रीट' जैसे आंदोलनों की बढ़ती स्वीकार्यता वर्तमान विकास मॉडल के प्रति बढ़ते असंतोष की तरफ संकेत करती है। वर्तमान विकास मॉडल को अपनी जन्मस्थली में ही चुनौती मिलने लगी है। नए विकास मॉडलों की सम्भावित रुपरेखाओं पर चर्चा हो रही है।

शताब्दियों में एकाधबार ही ऐसे मौके आते हैं जब पूरी मानवता चौराहे पर खड़ी हुई प्रतीत होती है और नई राहों को गढ़ने और उस पर आगे बढ़ने के लिए चिंतन–मनन करती है। भविष्य उन्हीं का होता है जो महापरिवर्तन की ऐसी बेला में सक्रिय भूमिका निभाते हैं, नई राह पर चलने का साहस दिखाते हैं। दुर्भाग्य से वैश्विक स्तर पर नव विकास को लेकर चलने वाली बहस से जुड़ी कोई भी हलचल भारत में नहीं दिखायी पड़ रही है। नीतिनियंताओं से लेकर विमर्शों को प्रोत्साहन देने वाली मीडिया तक में कोई सरगर्मी नहीं दिखायी पड़ती। भारत को अब भी वैश्विक वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किए गए विकास के 'फार्मूलों' के आधार पर दौड़ाया जा रहा है। इस दौड़ में कुछ फर्राटा धावक बहुत आगे निकल गए हैं, जबकि अधिकांश भारतीय लहुलूहान हैं, हांफते हुए किसी तरह अपने आपको इस दौड में बनाए हुए हैं।

विकास का वर्तमान फार्मूला मॉडल समावेशी नहीं है। यह विकास के मानकों को अपनी सुविधा तथा हितों के अनुरुप पारिभाषित करता है। घर पर खाने, घर के दूध–छाछ पीने की बजाय बाहर जाकर पेप्सी–कोक पीने और पिज्जा–बर्गर खाने की बढ़ती प्रवृत्ति को विकास बताया जाता है। स्वस्थ रहने वाली जीवनशैली को अपनाने की बजाय चिकित्सकों और अस्पतालों की उपलब्धता को विकास बताया जाता है। किसानों की आत्महत्या और व्यापक पैमाने पर पसरी गरीबी को दरकिनार कर अरबपतियों की संख्या में मामूली वृद्धि को सम्पूर्ण देश का विकास बता दिया जाता है।

हद तो तब हो जाती है जब फॉर्मला कार दौड़ को भी देश के विकास का एक पैमाना बताने की कोशिश की जाती है और मीडिया विकास के इस 'फार्मूला' मानक को सहज स्वीकृति प्रदान करती है। विजय माल्या की धुन पर नृत्य करने वाले नर्तक इसे देश के विकास में मील का पत्थर बताते हैं। विजय माल्या इस कार्यक्रम को देशभक्ति से ओतप्रोत बताते हुए कहते हैं कि ''यह मेरा हमेशा का सपना रहा है कि एक दिन यह महान देश ग्रां.प्रि. का आयोजन करे, इसलिए यह सप्ताहांत बहुत महत्वपूर्ण होगा और मुझे इस पर गर्व होगा।' इसी तरह बुद्ध इन्टरनेशनल सर्किट के निर्माता जेपी समूह के समीर गौड़ ने कहा कि ''हमने यह सपना केवल अपने लिए नहीं देखा। हमें भलीभांति पता था कि इस बेहद लोकप्रिय और प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय खेल आयोजन को भारत लाकर हम अपने देश का नाम बुलंद करने में कामयाब रहेंगे।'' बुद्ध इन्टरनेशनल सर्किट बनाने में जेपी समूह ने लगभग 20 अरब रुपए खर्च किए और यह दुनिया का एकमात्र सर्किट है जिसका स्वामित्व निजी हाथों में है। व्यापारिक भविष्यवक्ता भी इस आयोजन को देशभक्ति भरा कदम बताते हैं। उद्योग मंडल एसोचैम के अनुसार अगले 10 वर्षों में फार्मूला–1 के आयोजन से 90,000 करोड़ का राजस्व जुटाया जा सकता है और रोजगार के 15 लाख अवसरों का सृजन किया जा सकता है। ऐसोचैम के अनुसार पहली इण्डियन ग्रां.प्री. से लगभग 10,000 करोड़ रुपए का राजस्व मिलेगा। मीडिया इन बाजारू दबंगों से प्रश्न नहीं पूछती, उनके कथनों को ब्रह्मवाक्य मानकर उनका प्रसार करती है। आखिर उस देश में, जहां 80 फीसदी जनसंख्या अपनी रोजी–रोटी चलाने के लिए हाड़तोड़ मेहनत करती हो, विकास मॉडल किसानों को आत्महत्या करने के लिए विवश करता हो, विकल्पहीनता की स्थिति जनजातियों को अराष्ट्रीय हथियारबंद गिरोह का हिस्सा बनने के लिए विवश करती हो, वहां पर फर्राटा कार दौड़ विकास का पैमाना कैसे बन सकती है। आम आदमियों के प्रति संवेदनहीनता की ऐसी मिसाल कम ही देखने को मिलती है। 1877 में महारानी विक्टोरिया को भारत की प्रथम साम्राज्ञी घोषित किए जाने पर लार्ड लिटन ने एक भव्य राजदरबार का आयोजन किया था । उस समय भारत में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। तब सम्पूर्ण भारतीय मीडिया ने लिटन के इस संवेदनहीन रवैये की पुरजोर खिलाफत की थी। आज वैसी ही विकट स्थितियों में करोड़ों का तमाशा किया जाता है और मीडिया उसका विरोध करने के बजाय उसको विकास बताने में जुटा हुआ है। यह मीडिया पर पश्चिमी नजरिये का प्रभाव ही कहा जाएगा कि वह फर्राटा कार दौड़ को विकास का नया पड़ाव बताती है और दूसरी तरफ विश्व कबड्डी चैंपियनशिप की कवरेज को नगण्य कवरेज प्रदान करती है। जबकि भारतीय खेलों के लिहाज से विश्व कबड्डी चैंपियनशिप का आयोजन अधिक महत्वपूर्ण है।

पश्चिमी प्रभाव राजनीति और अर्थनीति जैसे क्षेत्रों में टूट चुका है, लेकिन सूचना प्रवाह पर आज भी पश्चिम का नियंत्रण है। मीडिया के क्षेत्र में पश्चिमी प्रभाव का तिलिस्म टूटना अभी बाकी है। पश्चिम मीडिया के जरिए अपने प्रभाव को बनाए रखने की अंतिम कोशिशें कर रहा है। दुनिया में विविधता, मौलिकता और सर्जनात्मकता को बनाए रखने के लिए पश्चिम के मीडियाई तिलिस्म का टूटना जरुरी है। इस तिलिस्म की कालकोठरी में कैद अलग–अलग स्वर्गों की मुक्ति के लिए भी इसका जमींदोज होना आवश्यक है। स्वतंत्रता संग्राम का व्यापक अनुभव होने के कारण भारतीय मीडिया पश्चिम के आखिरी तिलिस्म तोड़ने की चुनौती स्वीकार कर सकती है और चुनौती को स्वीकार करने का सबसे उचित समय यही है।

■

# पत्रकारिता में मानदंडों का अभाव – अज्ञेय

**सूर्यप्रकाश**

पत्रकारिता की विधा को साहित्य के अंतर्गत माना जाता है। पत्रकारिता को तात्कालिक साहित्य की भी संज्ञा दी गई है। यही कारण है कि समय–समय पर विभिन्न साहित्यकारों ने पत्रकारिता में अपना योगदान और पत्रकारों को मार्गदर्शन देने का कार्य किया। ऐसे ही व्यक्तित्व थे, सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय जिन्होंने साहित्य और पत्रकारिता दोनों में ही समान रूप से अपना योगदान दिया। अज्ञेय ने 'दिनमान' पत्रिका के संपादक के रूप में पत्रकारिता में नए मानदंड स्थापित किए। शायद यही कारण था कि अज्ञेय पत्रकारों एवं संपादकों के कार्य एवं उत्तरदायित्व को लेकर चिंतित रहे। अज्ञेय ने संपादकों की कम होती प्रतिष्ठा के लिए संपादकों को ही जिम्मेदार ठहराया था। अपनी चिंता को अज्ञेय ने इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा कि–

''हिन्दी पत्रकारिता के आरंभ के युग में हमारे पत्रकारों की जो प्रतिष्ठा थी, वह आज नहीं है। साधारण रूप से तो यह बात कही जा सकती है, अपवाद खोजने चलें तो भी यही पावेंगे कि आज का एक भी पत्रकार या संपादक वह सम्मान नहीं पाता जो कि पचास–पचहत्तर वर्ष पहले के अधिकतर पत्रकारों को प्राप्त था। आज के संपादक पत्रकार अगर इस अंतर पर विचार करें तो स्वीकार करने को बाध्य होंगे कि वे न केवल कम सम्मान पाते हैं, बल्कि कम सम्मान के पात्र हैं– या कदाचित सम्मान के पात्र बिल्कुल नहीं हैं, जो पाते हैं पात्रता से नहीं इतर कारणों से।'' ('आत्मपरक' से साभार उद्धृत)

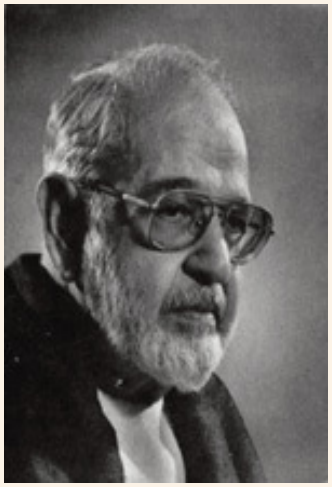

अज्ञेय ने संपादक के रूप में बहुत ख्याति प्राप्त की थी, उनके अपने निश्चित मानदंड थे, जिससे उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। अज्ञेय ने अपने पत्रकार जीवन की शुरूआत ''सैनिक'' से की थी। अज्ञेय 1 वर्ष तक ''सैनिक'' के संपादक मंडल में रहे, जिसके पश्चात वे ''विशाल भारत'' में डेढ़ वर्ष तक रहे। सन् 1947 में अज्ञेय ने साहित्यिक त्रैमासिक ''प्रतीक'' निकाला। इस पत्र में उन्होंने उदीयमान साहित्यकारों को स्थान दिया। अज्ञेय के उत्कृष्ट संपादन का ही परिणाम था कि ''प्रतीक'' का स्तर कभी गिरा नहीं। सन् 1965 में अज्ञेय जी ने साप्ताहिक ''दिनमान'' का संपादन आरंभ किया। यह कार्य उन्होंने उस समय में प्रारंभ किया जब उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं चल रहा था, परंतु उनका पत्रकार मन ''दिनमान'' को सफलता की ऊंचाइयों पर ले जाने के लिए व्याकुल था। उनके संपादन में ''दिनमान'' ने राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की। इसका कारण शायद अज्ञेय जी की संपादन नीति ही थी जिससे उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। उनके अपने निश्चित मानदंड थे जिन पर वे कार्य करते थे। उन्होंने संपादकों एवं पत्रकारों को भी मानदंडों पर चलने को प्रेरित किया। नीतिविहीन कार्य को ही उन्होंने पत्रकारों एवं संपादको की घटती प्रतिष्ठा का कारण बताया था। उन्होंने कहा कि–

''अप्रतिष्ठा का प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मानदंड नहीं है। वहीं हरिशचन्द्रकालीन संपादक–पत्रकार या उतनी दूर ना भी जावें तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का समकालीन भी हमसे अच्छा था। उनके पास मानदंड थे, नैतिक आधार थे और स्पष्ट नैतिक उद्देश्य भी। उनमें से कोई ऐसे भी थे जिनके विचारों को हम दकियानूसी कहते, तो भी उनका सम्मान करने को हम बाध्य होते थे। क्योंकि स्पष्ट नैतिक आधार पाकर वे उन पर अमल भी करते थे– वे चरित्रवान थे।'' ('आत्मपरक' से साभार उद्धृत)

अज्ञेय जी का मानना था कि पत्रकार अथवा संपादक को केवल विचार क्षेत्र में ही नहीं बल्कि कर्म के नैतिक आधार के मामले में भी अग्रणी रहना चाहिए। भारतीय लोगों पर उन व्यक्तियों का प्रभाव अधिक पड़ा है जिन्होंने जैसा कहा वैसा ही किया। ''पर उपदेश कुशल बहुतेरे'' की परंपरा पर चलने वाले लोगों को भारत में अपेक्षाकृत कम ही सम्मान मिल पाया है। संपादकों एवं पत्रकारों से कर्म क्षेत्र में अग्रणी रहने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा कि–

''आज विचार क्षेत्र में हम अग्रगामी भी कहला लें, तो कर्म के नैतिक आधारों की अनुपस्थिति में निजी रूप से हम चरित्रहीन ही हैं और सम्मान के पात्र नहीं हैं।'' ('आत्मपरक' से साभार उद्धृत)

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय उन पत्रकारों में से थे जिन्होंने पत्रकारिता में साहित्य के कलेवर को स्थान दिया। उन्होंने साहित्यिक और गैर–साहित्यिक पत्रकारिता में भी सक्रिय महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी पत्रकारिता में साहित्यिक पत्रकारिता की कम होती भूमिका के प्रति वे सदैव चिंतित रहे। उन्होंने कहा था–

''हिंदी पत्रकारिता में बहुत प्रगति हुई है, परंतु साहित्यिक पत्रकारिता में उतनी नहीं हुई है।''

अज्ञेय पत्रकारिता को विश्वविद्यालय से भी महत्वपूर्ण और ज्ञानपरक मानते थे। इसका एक उदाहरण है जब योगराज थानी पीएचडी करने में लगे हुए थे, तब अज्ञेय जी ने उनसे कहा कि–

''पत्रकारिता का क्षेत्र विश्वविद्यालय के क्षेत्र से बड़ा है, आप पीएचडी का मोह त्यागिए और इसी क्षेत्र में आगे बढ़िए।''

अज्ञेय ने पत्रकारिता और साहित्य में विभिन्न मानदंड स्थापित किए। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा लिए गए साक्षात्कार का हवाला देना यहां प्रासंगिक होगा, जिसमें उन्होंने कहा–

''मैं समझता रहा हूं कि साहित्यकार को समय–समय पर अपना महत्वपूर्ण अभिमत प्रकट करना चाहिए, परंतु अपने साहित्यिक व्यक्तित्व का ऐसा सामाजिक उपयोग होने देने में उसे दलबंदी से बचना चाहिए क्योंकि बिना इसके वह अपने निजी उत्तरदायित्व से स्खलित हो जाता है।''

अज्ञेय जी ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने पत्रकारिता में साहित्य के सरोकारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। अज्ञेय ने पत्रकारिता में जो पदचिन्ह स्थापित किए वे आज भी पत्रकार समाज के लिए मार्गदर्शन स्वरूप हैं। आज जब पत्रकारिता के आत्मावलोकन का मुद्दा एक बार फिर खड़ा हो गया है, ऐसे समय में अज्ञेय की पत्रकारिता और उनके मूल्य पत्रकारिता को नैतिक राह दिखाने का कार्य करते हैं। ■

# मीडिया से मल्टी–मीडिया बनी पत्रकारिता : बलदेव भाई

**भारतीय पत्रकारिता व्यावसायिकता की दौड़ में अपने कर्तव्यों से विमुख होती जा रही है। प्रौद्योगिकी के विकास और भारी पूंजी के चलते पत्रकारिता पहले मीडिया में तब्दील हुई और अब यह मल्टी मीडिया बन गई है। मीडिया के इस बदलते स्वरूप पर पांचजन्य के संपादक बलदेव भाई से बातचीत के प्रमुख अंश :**

**पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कैसे हुआ?**

पत्रकारिता सामाजिक जिम्मेदारी निभाने का सबसे सार्थक माध्यम है, यह मानकर मैं इस क्षेत्र में आया। मेरे कुछ वरिष्ठ जनों का मार्गदर्शन मुझे इस क्षेत्र में मिला और मैं धीरे–धीरे पत्रकार बनता चला गया।

**पत्रकारिता के क्षेत्र में आपके क्या संघर्ष रहे?**

पत्रकारिता में मैं उस समय आया जब यह क्षेत्र व्यावसायिक रूप में इतना प्रचलित नहीं हुआ था। तब पत्रकार बनने के पीछे एक सामाजिक दायित्व होता था, कुछ मकसद रहता था कि इसके माध्यम से देश व समाज के लिए तथा विशेषकर उन वर्गों के लिए जिनकी आवाज सामान्यतः दबी रहती है, काम किया जा सकता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में वह लोग ज्यादा आते थे जिनको लगता था कि सामाजिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है। उस समय दूसरे तरीके के संघर्ष थे। कम साधनों में ज्यादा काम करना पड़ना था। लोग कम थे। कई प्रकार की कठिनाइयां उठानी पड़ती थी। वेतन इतना कम था कि लोग पत्रकार बनने के लिए लालायित नहीं होते थे, जिस प्रकार से आज हैं। आज पत्रकारिता में वेतन, सुविधाएं और रूतबा बढ़ गया है। अब तो कम्प्यूटर पर सारा कार्य कर लिया जाता है, उस समय हैन्ड कम्पोजिंग का दौर था। प्रूफ पढ़ना और फिर गलतियां सुधरवाना बहुत कठिन था। उस समय प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष ज्यादा नहीं था लेकिन काम की प्रकृति को लेकर काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता था।

**पत्रकारिता में संघर्ष के दौरान आपका कोई रोचक अनुभव?**

जब मैं ग्वालियर 'स्वदेश' में था तो एक बार रिपोर्टिंग के लिए जा रहा था। रास्ते में इंद्रगंज थाने पर मैंने देखा कि 8–10 लोग खड़े थे। वहां एक महिला रो–रो कर थानेदार से कह रही थी कि ''मेरी बेटी 20 दिन से गायब है, जवान है, मेरी मदद कीजिए''। पुलिस वाले मदद करने के बजाय कह रहे थे कि वह भाग गई होगी। यह देखकर मैं बुढ़िया को अपने कार्यालय ले आया। मैंने अपने क्राइम रिपोर्टर को बुलाया। बुढ़िया ने बताया कि वह शहर में मजदूरी करने आई है, उसका एक पड़ोसी जो कि धनी था, उसकी बेटी पर बुरी नजर रखता था। बुढ़िया ने आगे बताया कि उसी लड़के ने मेरी बेटी को उठाया है और पुलिसवालों ने उससे पैसे खाए हैं। हमने 3–4 दिन तक इस खबर को छापा जिसके बाद एसएचओ डर गया और 2 दिन में मामला सुलझ गया।

**वर्तमान पत्रकारिता के दौर में आप क्या बदलाव देखते हैं?**

वर्तमान में बहुत कुछ बदल गया है। पत्रकारिता पहले मीडिया बनी और अब यह मल्टीमीडिया बन गया है। सामाजिक क्षेत्र में मीडिया का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। अब कोई चीज उसकी नजरों से अछूती नहीं रह सकती। उसका बहुत विस्तार हो गया है। मीडिया अब तकनीक पर आधारित हो गया है जिसके कारण इसकी पहुंच बहुत दूर तक हो गई है। इसके कुछ सकारात्मक तो कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं। तकनीकी प्रभाव के कारण इसकी गति बहुत तेज हो गई है, जिसके कारण इसकी पहुंच बढ़ गई है। यह बदलाव कई दृष्टियों से सकारात्मक भी है।

**क्या मीडिया अपने पत्रकारीय मूल्यों से भटक रहा है?**

यह पूरी तरह से जनअवधारणा बन गई है कि पत्रकारिता की शुरूआत जिन मूल्यों व जिन सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए और जिस राष्ट्र के नवनिर्माण के भाव को लेकर हुई, वह लुप्त हो रहे हैं। एक समय में मिशन कहा जाने वाला मीडिया अब मिशन से हट कर पूरी तरह व्यावसायिक हो गया है। यह अलग बात है कि व्यावसायिकता में दौड़ते हुए भी मीडिया कुछ काम ऐसे कर जाता है जो उस मिशन की थोड़ी संवर्द्धना करता है, लेकिन मीडिया की दृष्टि पैसा कमाना ही रहती है। स्वाधीनता आन्दोलन में मीडिया सबसे सशक्त माध्यम था। स्वाधीनता आन्दोलन के लगभग सभी नेताओं ने पत्रकारिता के माध्यम से ही जनजागृति उत्पन्न की। उस समय पत्रकारिता के साथ राष्ट्रीय भावना जुड़ी हुई थी और स्वाधीनता के बाद भी आशा जताई जा रही थी कि राष्ट्र के नवनिर्माण में भी मीडिया की भूमिका बदले हुए रूप में सामने आएगी लेकिन दुर्भाग्य से स्वाधीनता के बाद धीरे–धीरे पत्रकारिता का

मिशन लुप्त होता चला गया। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी कहा करते थे कि ''पत्रकारिता पहले मिशन थी, फिर प्रोफेशन हुई और अब सेंसेशन हो गई।'' अब तो पत्रकारिता सेंसेशनिज्म में लगी हुई है यानि सनसनी पैदा करके लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना और ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना। मीडिया में अनेक विदेशी कंपनियों का पैसा लगा हुआ है जिसने मीडिया की पूरी दृष्टि बदल दी है। मीडिया अब जनता की आवाज बनने वाला सशक्त माध्यम नहीं रहा। अब तो अखबारों में होड़ रहती है कि पेज 3 को किस तरह ज्यादा से ज्यादा आकर्षक बनाया जा सकता है। जबकि भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या का पेज 3 से कोई लेना–देना नहीं है। मीडिया अभिजात्य वर्गों के लिए मनोरंजन बन गया है।

**क्या मीडिया अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों को सही ढंग से निभा पा रहा है?**

मीडिया का अभी भी मानना है कि यह अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों को सही ढंग से निभा रहा है लेकिन इसके क्रियाकलापों को देखकर ऐसा नहीं लगता। पिछले दिनों नीरा राडिया का मामला जब सामने आया तो कितनी दुर्भाग्य की स्थिति बनी कि कई ऐसे बड़े पत्रकार जिन्हें लोग आदर्श समझते थे, वह सत्ता की दलाली में संलिप्त पाए गए। उनकी भूमिका यहां तक देखी गई कि कौन मंत्री बने और कौन किस पद पर विराजमान हो। यह राष्ट्रीय भाव से नहीं बल्कि निजी लाभ के लिए हुआ। सत्ता के गठजोड़ से पैसा, प्रतिष्ठा, पद कमाने के लिए हुआ। आज राष्ट्रीय मीडिया अपने उद्देश्यों से भटका हुआ है। बल्कि छोटे शहरों के पत्रकार व मीडिया संस्थान राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति जिम्मेदार दिखाई देते हैं।

**हाल ही में सरकार की ओर से मीडिया पर कई टिप्पणियां आई है, क्या सरकार इस तरह मीडिया को दबाना चाहती है?**

कोई भी सरकार नहीं चाहती कि मीडिया स्वतंत्र और सशक्त हो। बिहार में कई वर्षों पहले जगन्नाथ मिश्र की सरकार ने मीडिया पर शिकंजा कसने व काला कानून बनाने का प्रयास किया व आपातकाल के समय इंदिरा गांधी ने पूरी ताकत मीडिया को कुचलने में लगा दी। सरकार भी मीडिया नियमन का प्रयास कर रही है लेकिन मीडिया भी सरकार के इस प्रयास को बल देता है। मीडिया को अपनी आचार संहिताओं का पालन करना चाहिए और मीडिया पर कयास लगाने के मौके नहीं देने चाहिए।

**मजीठिया आयोग की सिफरिशों से आप कहां तक सहमत हैं?**

पालेकर आयोग से लेकर अब तक जितने आयोग बने हैं, वह सब पत्रकारों के हितों को ध्यान में रखकर हैं। इससे पहले पत्रकारों की काम करने की शर्तें, उनके वेतन, सुविधाएं नगण्य थी लेकिन इन आयोगों ने चिंता जाहिर की कि विविध क्षेत्र में जोखिमपूर्ण कार्य करने वाले पत्रकारों के आर्थिक हितों की सुरक्षा की जाए और इसीलिए इन आयोगों ने, चाहे वह पालेकर आयोग हो, बछावत आयोग हो या मजीठिया आयोग हो, सबने पत्रकारों की आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सिफारिशें प्रस्तुत की। यह सभी सिफारशें उपयोगी हैं और इन्हीं के कारण पत्रकारों की स्थितियों में सुधार आया है। मजीठिया आयोग की सिफारिशों को भी लागू किया जाना चाहिए।

**दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्र में क्या अंतर है?**

दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्र के उद्देश्य में बहुत अंतर नहीं है, कार्यशैली में व्यापक अंतर है। दैनिक समाचार पत्र एक प्रकार से समाचारों पर आधारित काम में जुटा हुआ है और इसमें काम का दबाव बहुत ज्यादा रहता है। उसकी डैडलाइन की चिंता करनी पड़ती है। संख्या बहुत अधिक होने के कारण दैनिक समाचार पत्रों में प्रतिस्पर्धा का दबाव बहुत ज्यादा रहता है। कल पर कुछ नहीं टाला जा सकता, जो करना है आज ही करना होता है। दैनिक समाचार पत्र की पूरी टीम पूरे समय दबाव में रहकर काम करती है। साप्ताहिक समाचार पत्र में थोड़ी फुर्सत रहती है, लेकिन इसमें जिम्मेदारी यह रहती है कि पूरे सप्ताह में जो भी घटित हुआ है, उसका विश्लेषणात्मक वर्णन अपने पाठकों तक पहुंचाना होता है। इसमें चुनौती रहती है कि सम्पूर्णता के साथ विषय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है या नहीं, लेकिन काम का दबाव इसमें कम रहता है।

**मीडिया की भावी दिशा क्या होनी चाहिए?**

मीडिया की प्रारम्भिक या भावी एक ही दिशा होनी चाहिए कि वह समाज व देश के लिए समर्पित होकर कार्य करे और उसके प्रयासों से समाज में विघटन, अलगाववाद व अराजकता की स्थितियां खत्म होनी चाहिए और देश में एक ऐसा वातावरण तैयार होना चाहिए जिससे असामाजिक तत्वों को बल न मिले। अगर मीडिया इतना सशक्त हो जाएगा तो देश की समस्याएं भी खत्म हो जाएगी। हाल ही में राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार परिषद ने साम्प्रदायिक एवं लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक प्रस्तुत किया है जो इतना खतरनांक है जिसमें हिन्दुओं को घोषित अपराधी मान लिया गया है। कुछ राष्ट्रीय मीडिया को छोड़ दें तो किसी भी मीडिया संस्थान ने लोगों को इस विधेयक के प्रति जागरूक करने का प्रयास नहीं किया। मीडिया अगर सतर्क नहीं होगा तो देश की सत्ता पर बैठे लोग अपने वोट बैंक के लिए देश को खतरे में डाल सकते हैं। भारतीय पत्रकारिता की नींव को ध्यान में रखकर वर्तमान में भी मीडिया को राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। पत्रकारों को मीडिया की शक्ति का दुरूपयोग करने से बचना चाहिए।

**पत्रकारिता के क्षेत्र में आने वाले नवागंतुकों को आप क्या संदेश देना चाहते हैं?**

मीडिया में आने वाले नवागंतुकों को सबसे पहले मैं बधाई देना चाहता हूं। उन्हें मीडिया में ग्लैमर और मीडिया की शक्तियों का दुरूपयोग करने से बचना चाहिए। मीडिया के भविष्य को बचाने की जिम्मेदारी उन्हीं के हाथों में है। वह सामाजिक प्रतिबद्धता, देश की सेवा व नवनिर्माण की भावना लेकर मीडिया के क्षेत्र में आए। नए लोगों को अध्ययन में अपनी रूचि बनानी पड़ेगी, बिना अध्ययन के हम अपने विचारों को सशक्त नहीं कर सकते। ■

# हिंदी पत्रकारिता के उन्नायक मदन मोहन मालवीय

पंडित मदन मोहन मालवीय। एक देशभक्त, लोकप्रिय शिक्षक, विद्वान राजनीतिज्ञ, प्रखर वक्ता, उच्च कोटि के वकील और हिंदी पत्रकारिता के उन्नायक। जिनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। महामना के नाम से लोकप्रिय रहे मालवीय जी ने देश की स्वतंत्रता के आंदोलन को गति प्रदान की। देश में अंग्रेजों के अत्याचारी शासन के विरूद्ध जनता को जागृत करने का कार्य मालवीय जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से किया। जनता की जागरूकता ही आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने का कार्य करती है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मालवीय जी ने पत्रकारिता के माध्यम से जनचेतना और जनशिक्षण का कार्य किया था। पंडित मदन मोहन मालवीय का जन्म 25 दिसंबर, 1861 को इलाहाबाद में हुआ था। पिता पंडित ब्रजनाथ संस्कृत के प्रकांड विद्वान और कथावाचक थे। मदन मोहन मालवीय को पिता से विद्वता और माता से सच्चरित्रता जैसे गुण विरासत में मिले थे, जिनका प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। महामना ने अनेक कार्यों के माध्यम से राष्ट्र सेवा की, जिसमें पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान है।

पंडित मदन मोहन मालवीय को हिंदी पत्रकारिता का उन्नायक माना जाता है, जिन्होंने भारतेंदु हरिशचन्द्र के जाने के बाद हिंदी पत्रकारिता में उपजे शून्य को समाप्त किया। सन् 1887 में प्रयाग के निकट कालाकांकर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र 'हिंदोस्थान' के वे संपादक बने। संपादक का दायित्व उन्होंने हनुमत प्रेस के संस्थापक राजा रामपाल के आग्रह पर संभाला था। उन्होंने अपने स्वाभिमान और पत्रकारिता के कर्तव्यों के साथ कभी भी समझौता नहीं किया। राजा रामपाल द्वारा संपादक बनने के आग्रह पर उन्होंने राजा साहब के समक्ष दो शर्तें रखीं। वे शर्तें इस प्रकार थीं, कि आप कभी भी मेरे कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और नशे की हालत में मुझे कभी मिलने के लिए नहीं बुलाएंगे। राजा रामपाल ने मालवीय जी की इन शर्तों को सहर्ष मान लिया, जिसके बाद ही महामना ने संपादक का दायित्व संभालने की स्वीकृति दी। महामना ने 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र को नई ऊंचाईयां प्रदान कीं।

मालवीय जी के संपादकीय सहयोगी तत्कालीन समय के प्रतिष्ठित विद्वान और भाषाविद् थे। इनमें प्रताप नारायण मिश्र, बाबू शशि भूषण, बालमुकुंद गुप्त आदि प्रमुख थे। महामना के संपादन में 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र देश का लोकप्रिय पत्र बन गया। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक स्थितियों पर उनके लेख व संपादकीय टिप्पणियां लोगों को बहुत भाती थीं। मालवीय जी ने समाचार पत्रों की पत्रकारिता में एक नवीन प्रयोग किया, उन्होंने 'हिंदोस्थान' में गांवों की समस्याओं और समाचारों को भी स्थान दिया। ग्रामीण समस्याओं और विकास के समाचारों को पत्रों में स्थान देने का आरंभ मालवीय जी ने ही किया था। इसके बाद से यह विषय हिंदी समाचार पत्रों के महत्वपूर्ण अंग बन गए।

मालवीय जी ने ढाई वर्षों तक निरंतर 'हिंदोस्थान' के संपादक का दायित्व संभाला। लेकिन एक दिन राजा रामपाल ने महामना को नशे की हालत में किसी विषय पर परामर्श के लिए बुलवाया। राजा साहब से मिलते ही मालवीय जी ने नशे में उनको न बुलाने की शर्त याद दिलाते हुए कहा कि अब मैं एक पल भी यहां नहीं ठहर सकता। राजा साहब ने उनको बहुत मनाया लेकिन वे अपने निर्णय से नहीं डिगे। 1889 में मालवीय जी ने 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र को छोड़ दिया।

'हिंदोस्थान' छोड़ने के बाद महामना प्रयाग आ गए और उस समय के प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र 'इंडियन ओपीनियन' से जुड़े। कुछ समय पश्चात 'इंडियन ओपीनियन' का लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'एडवोकेट' में विलय हो गया। विलय के पश्चात भी मालवीय जी 'एडवोकेट' से जुड़े रहे, इसी दौरान उन्होंने पत्रकारिता की पढ़ाई शुरू कर दी। मालवीय जी ने सन् 1891 में एल.एल.बी की परीक्षा उत्तीर्ण की और जिला न्यायालय में वकालत करने लगे। सन् 1893 में उन्हें उच्च न्यायालय में वकालत करने का मौका मिला। उच्च न्यायालय में वकालत करते हुए भी मालवीय जी लेखन के माध्यम से समाचार पत्रों से जुड़े रहे। मालवीय जी की सदैव ही यह आकांक्षा रही थी कि अपने प्रयास से समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया जाए।

सन् 1907 में वसंत पंचमी के दिन हिंदी पत्रकारिता ने नया उदय देखा। यह उदय मालवीय जी के समाचार पत्र 'अभ्युदय' के रूप में हुआ था, यह पत्र साप्ताहिक था। मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के लिए लिए जो संपादकीय नीति तैयार की थी, उसका मूल तत्व था स्वराज। महामना ने 'अभ्युदय' में ग्रामीण लोगों की समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। जिसका उदाहरण 'अभ्युदय' के पृष्ठों पर लिखा यह वाक्य था– 'कृपा कर पढ़ने के बाद अभ्युदय किसी किसान भाई को दे दीजिए'।

मालवीय जी की पत्रकारिता का ध्येय ही राष्ट्र की स्वतंत्रता था, जिसके लिए वे जीवनपर्यंत प्रयासरत रहे। उन्होंने 'अभ्युदय' में कई क्रांतिकारी विशेषांक प्रकाशित किए। इनमें 'भगत सिंह अंक' व 'सुभाष चंद्र बोस' विशेषांक भी शामिल हैं, जिसके कारण 'अभ्युदय' के संपादक कृष्णकांत मालवीय को जेल तक जाना पड़ा। 'अभ्युदय' के क्रांतिकारी लेखों में मालवीय जी की छाप दिखाई पड़ती थी।

गांवों से संबंधित विषयों को समाचार पत्र में स्थान देने के अलावा लेखकों को मानदेय देने का प्रचलन भी मालवीय जी ने ही प्रारंभ किया था। 'अभ्युदय' में प्रकाशित पं महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख के साथ ही उन्होंने लेखकों को मानदेय देने की शुरूआत की थी। उनका यह कार्य इसलिए भी प्रशंसनीय था क्योंकि उस समय 'अभ्युदय' की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी।

मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के पश्चात 24 अक्टूबर, 1910 को अंग्रेजी पत्र 'लीडर' का प्रारंभ किया। मालवीय जी 'लीडर' के प्रति सदा संवेदनशील रहे, डेढ़ वर्ष बीतते–बीतते 'लीडर' घाटे की स्थिति में जा पहुंचा। महामना उस दौरान काशी हिंदू विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करने में लगे हुए थे। जब 'लीडर' के संचालकों ने मालवीय जी को घाटे की स्थिति से अवगत कराया तो वे विचलित हो उठे। उन्होंने कहा कि, ''मैं लीडर को मरने नहीं दूंगा।'' काशी विश्वविद्यालय की स्थापना का कार्य बीच में ही रोककर मालवीय जी 'लीडर' के लिए आर्थिक व्यवस्था के कार्य में जुट गए। पहली झोली उन्होंने अपनी पत्नी के आगे यह कहते हुए फैलाई कि ''यह मत समझो कि तुम्हारे चार ही पुत्र हैं। दैनिक लीडर तुम्हारा पांचवां पुत्र है। अर्थहीनता के कारण यह संकट में पड़ गया है। तो क्या मैं पिता के नाते उसे मरते हुए देख सकता हूं।'' मालवीय जी के अथक प्रयासों से लीडर बच गया। मालवीय जी ने पत्रकारिता में नए प्रयोग किए और पत्रकारिता को नए आयामों पर पहुंचाया। 12 नवंबर, 1946 को महामना मदन मोहन मालवीय ने अपने प्राण त्याग दिए, परंतु उनकी स्मृतियां और उनके आदर्श सदैव पत्रकारिता जगत में विद्यमान रहेंगे। ■

# चौथे स्तम्भ की नींव – पत्रकार या रोबोट

**अमेरिकी सॉफ्टवेयर कम्पनियां एक ऐसा रोबोट तैयार करने का दावा कर रही हैं जो बेसिक डाटा देने पर स्टैंडर्ड फोरमैट की खबर तैयार कर सकता है। साथ ही यह भी कयास लगाए जा रहे हैं कि इस कदम से बड़ी संख्या में पत्रकारों की निर्भरता कम हो जाएगी। इस पर पत्रकारों के विचार इस प्रकार से हैं :–**

वाह भई वाह... चलो अब पत्रकारों को मशीन की तरह काम नही करना पड़ेगा। अब मशीन खबर भी लिख देगी। 'रोबोट पत्रकार' शब्द भी प्रचलित हो जायेगा। सबसे अच्छे प्रोसेसर वाले रोबोट को चीफ या न्यूज एडिटर बना दिया जायेगा। डेस्क पर इंसान की जगह रोबोट बैठेंगे और रिपोर्टरों को कहा जायेगा की बेसिक डेटा तैयार करके पैन ड्राइव या ब्लू टूथ से सेंड कर दो, फिर न्यूज का फॉर्मेट सिलेक्ट करो (जैसे इनवर्टेड पिरामिड फोर्मेट) और फिर इंट्रो टाइप सिलेक्ट करो और अपने घर जाओ। हां कभी ऐसा भी हो सकता है कि तकनीकी खराबी आये और आईटी वाला आ कर बताये कि आज अखबार नहीं गया क्योंकि सारे रोबोट पत्रकार हेंग हो गये थे, उन्हें फोर्मेट करके दोबारा सोफ्टवेयर डालना पड़ेगा और अगर वायरस आ जाये तो पता नहीं खबर कैसी बनेगी? लेकिन इन सब बातों से इतर सोचा जाये तो एक इंसान जिस तरह से खबर लिख सकता है उस तरह रोबोट लिख पायेगा, ये संभव नही है और पत्रकार लिखते समय खबर की महत्ता के हिसाब से लिखता है। आने वाले समय अगर ये रोबोट पत्रकार आते है तो सारी खबर एक जैसी ही लगेगी और न जाने किस–किस तरह की गलतियां वो रोबोट संपादक या पत्रकार करेगा। अभी तो केवल कयास ही लगाये जा सकते है कि क्या होगा? लेकिन इतना तय है कि पत्रकारों की निर्भरता कम नहीं होगी। हां मशीनी पत्रकारों की जरूरत कम पड़ेगी, जो केवल कंप्यूटर में इधर–उधर से कापी पेस्ट करके खबर बनाकर या भाषा ठीक–ठाक करके अपने को पत्रकार घोषित कर देते हैं। इन स्वयंभू पत्रकारों की नौकरी पर जरूर लात पड़ने वाली है। बाकी आने वाले वक्त पर छोड़ देते हैं।

हिमांशु डबराल (आज समाज)

यदि कोई नई तकनीक आती है तो हमें उसका स्वागत करना चाहिए। बाकि पत्रकार तो जमीन से जुड़ा हुआ वह व्यक्ति है, जिसका कोई विकल्प तो हो ही नहीं सकता। हां यह हो सकता है कि पत्रकारिता का स्वरूप बदल जाये और अब बदले स्वरूप में पत्रकारों की जरूरत होगी या सिर्फ वेतनभोगी कर्मचारियों की, यह बहस का अलग विषय है।

अनूप आकाश वर्मा (पंचायत संदेश)

एक फिल्म देखी थी अभी कुछ दिन पहले यूनिवर्सल सोल्जर। फिल्म में कहानी कुछ ऐसी है कि सभी चीजें कंप्यूटर चलाता है और जो सैनिक लड़ाई में मारे जा चुके हैं उनको फिर से जिन्दा करने (साईंस फिक्शन से) के बाद और ज्यादा ताकतवर बना कर फिर से लड़ाई में भेजा जाता है लेकिन एक दिन सब कुछ कंट्रोल करने वाला कंप्यूटर बेकाबू हो जाता है और फिर गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती है, तबाही बहुत पास होती है। फिल्में समाज का आईना होती हैं। इससे सबक लेकर हमें हर काम मशीनों पर नहीं छोड़ना चाहिए। वैसे भी रोबोट बेसिक डाटा से रिपोर्ट तो लिख देगा लेकिन क्या वो व्यंग्य कि खुराफात उगल पायेगा...?? क्या वो सही को सही और गलत को गलत कह पायेगा...???

विकास शर्मा (आज समाज)

पत्रकारों की निर्भरता किसी यंत्र द्वारा हनन नहीं की जा सकती। मीडिया में पत्रकारों का अस्तित्व शुरू से रहा है और आगे भी बना रहेगा। वास्तव में खबर की महत्ता को एक पत्रकार ही समझ सकता है क्योंकि खबर को समझना ही सबसे जरूरी कार्य होता है, जिसे वह पत्रकारिता में अनुभव के आधार पर निर्धारित करता है। किसी यंत्र द्वारा इस परिपक्वता को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

नागेन्द्र (दैनिक जागरण)

प्रिंट मीडिया में इसका व्यापक प्रभाव पड़ेगा और इससे समाचार पत्रों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। खबरें, विज्ञापन के प्रकार की रह जायेगी, जिन्हें सिर्फ देखा जा सकेगा। पाठकों की रूचि भी खत्म होती जाएगी क्योकि तथ्यात्मक खबरों का चयन असम्भव हो जाएगा। हां इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर इसका उतना प्रभाव नहीं होगा, जितना कि प्रिंट पर होगा। किन्तु फिर भी यह चिंता का विषय अवश्य है।

आशीष प्रताप सिंह (पीटीसी न्यूज)

इस विषय पर अपनी राय देने से पूर्व यह बताना जरूरी समझता हूं कि वास्तव में आज पत्रकारों की क्या स्थिति है। आज चौथे स्तम्भ में कुछ दलालों या राजनीतिज्ञों का बढ़ता प्रवेश वास्तव में मीडिया की वास्तविक छवि को धूमिल करता जा रहा है। ऐसे में कुछ लोग अपना सबकुछ दांव पर लगा कर इस पेशे में आगे बढ़ जाना चाहते हैं। इस प्रकार से आगे बढ़ने वालों की योग्यता भी केवल चाटुकारिता मात्र है। ऐसे में मुझे लगता है कि मात्र उन्हीं पत्रकारों को इससे समस्या होगी। बाकी जो वास्तव में कर्मठता के साथ कार्यरत हैं, उन्हें कोई भी नहीं डिगा सकता।

पियूष श्रीवास्तव (अमर उजाला)

ऐसा कभी संभव ही नहीं है कि कोई मशीन मानव द्वारा किया गया हर काम कर पाने में समर्थ हो। चाहे अमेरिकी टेक्नोलॉजी कितनी भी आगे बढ़ जाए लेकिन वह मानव मस्तिष्क को मशीन में कैसे फिट कर सकती है। इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि मनुष्य के अंदर सोचने व समझने की क्षमता होती है लेकिन यंत्रों में नहीं और जब कोई कार्य बिना सोचे समझे किया जायेगा तो उसका परिणाम क्या होगा, इसका अर्थ हर कोई भली–भांति से लगा सकता है। इसलिए बहुत अधिक चिंता का विषय नहीं है। हां इतना अवश्य है कि मीडिया संस्थानों में कुछ कर्मचारियों की छंटनी अवश्य हो सकती है, इस नाम पर भी।

जयंत कुमार (स्वतंत्र टिप्पणीकार) ■

# विषय – ग्रामीण विकास में रेडियो कार्यक्रमों का प्रभाव

## शोधार्थी – डॉ. प्रशान्त कुमार, चौ. चरण सिंह विश्वविद्याालय, मेरठ

भारतीय विकास में संचार के साधनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जन–जन तक विकास कार्यक्रमों को पहुंचाने का कार्य यही संचार माध्यम करते हैं। चूंकि भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में बसती है, इसीलिए ग्रामीण विकास को सशक्त बनाने में इन संचार माध्यमों ने विशेष ध्यान दिया है। गांवों में विकास की धारा को प्रवाहित करने में रेडियो ने सराहनीय भूमिका निभाई है। सरकार द्वारा विकासपरक कार्यक्रम, योजनाओं व अभियानों की जानकारी ग्रामीण अंचल के लोगों तक प्रभावी ढंग से पहुंचाने का माध्यम रेडियो ही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता की कमी के कारण मुद्रित माध्यम प्रभावी रूप से संदेश का संप्रेषण करने में सफल नहीं हो सकते। इसके अति. रिक्त दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात के साधनों की कमी और शहरों व कस्बों से सम्पर्क मार्ग न होने के कारण वहां समाचार पत्र–पत्रिकाओं के पहुंचने में विलम्ब हो जाता है जिसके चलते यह मुद्रित माध्यम प्रभावी नहीं हो सकते। रेडियो के विकासपरक कार्यक्रम स्थानीय भाषा व बोली में बनाए जाते हैं, जिससे कि लोगों का जुड़ाव रेडियो से अधिक होता है।

भारत निर्माण की बात हो या जनसंख्या आदि की समस्या हो, नरेगा हो या प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना हो, सरकार द्वारा चलाए जा रहे विकासपरक कार्यक्रम तभी सफल होते हैं जब इसकी जानकारी ग्रामीण लोगों तक पहुंचे। रेडियो ने सरकार की योजनाओं और ग्रामीण लोगों के बीच सेतु की भूमिका निभाई है और लोगों को विकास कार्यों के प्रति जागरूक किया है। रेडियो ने ग्रामीण लोगों को शिक्षित करने का कार्य भी किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो की संभावनाओं को देखते हुए डॉ. प्रशान्त कुमार ने 'ग्रामीण विकास में रेडियो कार्यक्रमों का प्रभाव (नजीबाबाद रेडियो केन्द्र से 1998–2008 तक प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का विशेष अध्ययन)' विषय पर शोध किया है। शोध के उपरान्त ज्ञात हुआ है कि रेडियो ने न केवल सामाजिक विकास को प्रभावी बनाया है, बल्कि ग्रामीणों में राजनीतिक जागरूकता लाने का कार्य भी किया है।

रेडियो ने मनोरंजन कार्यक्रमों के माध्यम से ग्राम विकास की धारा को तेज किया है और लोगों को शिक्षित करने का कार्य भी किया है। लोगों में कुरीतियों व अंधविश्वासों को दूर कर जनजागृति लाने का कार्य किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का मानना है कि ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास में भी रेडियो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रेडियो लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए वरदान साबित हुआ है। रेडियो के माध्यम से कृषि विकास को भी प्रोत्साहित किया

गया है। रेडियो किसानों तक न केवल मौसम का हाल पहुंचाता है, बल्कि उन्हें प्रमाणित बीजों की जानकारी भी प्रदान करता है। इसके अलावा उचित समय पर फसलों की बुआई व सिंचाई की जानकारी भी रेडियो द्वारा प्रसारित की जाती है। फसलों की बीमारियां व फसलों की देखरेख से संबंधित जानकारियां प्रदान कर रेडियो ने सराहनीय कार्य किया है। हालांकि अधिकांश लोगों का मानना है कि कृषि कार्यक्रमों की विषयवस्तु में अपेक्षित सुधार की आवश्यकता है।

रेडियो ने महिला एवं बाल विकास कार्यक्रमों के प्रसारण द्वारा महिलाओं की स्थिति सुधारने में भी सराहनीय कार्य किया है। स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम में स्वास्थ्य शिक्षा व गर्भवती महिलाओं की नियमित जांच से संबंधित जानकारी प्रदान की जाती है और नवजात शिशुओं में होने वाली बीमारी के प्रति जागरूक करने के साथ टीकाकरण के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

युवाओं के लिए 'युवावाणी' कार्यक्रम' ने बहुत प्रसिद्धि पाई है। इसके अलावा युवाओं में सामान्य ज्ञान की वृद्धि के लिए 'एक नजर' कार्यक्रम अत्यधिक सराहा गया है। रेडियो ने स्कूल चलो अभियान, प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता मिशन आदि विज्ञापनों के माध्यम से शिक्षा के प्रति जागरूक बनाने का कार्य भी किया है। रेडिया पर रोजगार समाचार को भी नियमित प्रसारित किया जाता है और विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की जानकारी दी जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में रेडियो ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। रेडियो ने अपने कदम गांव–गांव तक विस्तृत किए हैं और प्रत्येक गांव विशेष के लिए वहां की भाषा और संस्कृति के अनुसार अपने कार्यक्रमों का निर्माण किया है। यही कारण है कि भारत की ग्रामीण जनसंख्या रेडियो को वरदान मानती है। ग्राम विकास में रेडियो के इस अमूल्य योगदान के लिए डॉ. प्रशान्त कुमार द्वारा किया गया यह शोध कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। ■

# मजीठिया बनी प्रेस मालिकों के गले में फंसी हड्डी

**अमल कुमार श्रीवास्तव**

भारतीय संविधान के अन्तर्गत देश में रहने वाले सभी व्यक्तियों को अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में लिखित रूप से विद्यमान है। इसी अनुच्छेद के अन्तर्गत देश के चौथे स्तम्भ अर्थात प्रेस को भी अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है लेकिन आजादी के पूर्व से लेकर अब तक यह स्वतंत्रता सत्ताधारियों के हाथ की कठपुतली मात्र बन कर रह गई है। आरम्भ से ही प्रेस की आजादी पर बंदिश लगाने हेतु अनेकों प्रयास किए गए और समय–समय पर जनहित के लिए उठाई गई चौथे स्तम्भ की आवाज को दबाया गया।

हाल ही में हुए जनान्दोलनों में सरकार की भूमिका को लेकर भड़के जनाक्रोश से घबराये सत्ताधारियों ने अपनी धूमिल हुई छवि को फिर से साफ करने हेतु एक प्रयास के क्रम में चौथे स्तम्भ के सिपाहियों के सामने पड़े हुए मजीठिया वेज बोर्ड नामक मुद्दे को फिर से उछाला है। वर्तमान समय में यह मुद्दा सरकार और चौथे स्तम्भ के मध्य सेतु के रूप में है, जिसे प्रेस मालिक निरन्तर तोड़ने व प्रेस में कार्यरत कर्मचारी जोड़ने में लगा है।

हालांकि मजीठिया वेज बोर्ड ने दिसंबर 2010 में ही अपनी पहली रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। इस रिपोर्ट के अनुसार अखबारी और एजेंसी कर्मियों (जिसमें पत्रकारों और गैर पत्रकारों) के लिए 65 प्रतिशत तक वेतन वृद्धि की सिफारिश की गई है तथा साथ में मूल वेतन का 40 प्रतिशत तक आवास भत्ता और 20 प्रतिशत तक परिवहन भत्ता देने का सुझाव दिया गया है। न्यायमूर्ति जी. आर. मजीठिया के नेतृत्व वाले वेतन बोर्ड ने यह भी सिफारिश की कि नए वेतनमान जनवरी 2008 से ही लागू किए जाएं। इसके अतिरिक्त बोर्ड ने पहले ही मूल वेतन का 30 प्रतिशत अंतरिम राहत राशि के रूप में देने का ऐलान कर दिया था। प्रेस उद्योग के इतिहास में किसी वेतन बोर्ड ने इस तरह की सिफारिश पहली बार की है।

इस सिफारिश के आने मात्र से मीडिया जगत में हलचल मच गई। बड़े मीडिया व्यावसायी पूरी तरह से इसके विपक्ष में खड़े होते दिखाई दिए। आईएनएस ने इस रिपोर्ट के विरोध में खुल कर अभियान तक चलाया, जिसकी अगुवाई 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसे कुछ बड़े स्तरीय समाचार पत्रों ने की। इस अभियान के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयास किया जा रहा था कि यदि इस वेज बोर्ड की सिफारिश लागू हो गयी तो देश के अधिकांश समाचार पत्र बंद हो जाएंगे। इस अभियान के माध्यम से प्रेस जगत को भ्रमित करने के लिए आईएनएस ने कुछ इस प्रकार से तथ्य प्रस्तुत किए कि अगर यह सिफारिश लागू हुई तो एक हजार करोड़ टर्न ओवर वाले समाचार पत्रों के चपरासी का वेतन भी 40 से 45 हजार रूपए तक हो जाएगा, जो कि सीमा के जवान और एक न्यायाधीश के वेतन से भी अधिक है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने यह स्पष्ट किया है तो उसे यह भी बताना चाहिए कि देश में एक हजार करोड़ टर्न ओवर वाले कितने समाचार पत्र है और उनमें कितने ड्राईवर और चपरासी नियमित कर्मचारी हैं, जो इनके दावे के अनुसार बढ़ा वेतन पाने के हकदार होंगे।

इस सम्बन्ध में "इंडियन न्यूज पेपर्स सोसायटी (आई.एन.एस.) के अध्यक्ष आशीष बग्गा ने गंभीर आशंका प्रकट की है कि केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा दीवाली के मौके पर मजीठिया वेज बोर्ड की सिफारिशों को स्वीकृति देने से पूरे देश में लघु तथा मंझौले समाचारपत्रों का प्रकाशन बंद हो जाएगा क्योंकि प्रस्तावित वेतन बढ़ोतरी बहुत ज्यादा है तथा उद्योग की क्षमता से परे है। उन्होंने चेतावनी दी कि इससे बड़े प्रकाशनों को भी वेतन बढ़ोतरी को लागू करने से दिक्कत हो सकती है। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है कि आई.एन.एस. के त्रुटिपूर्ण तथा एकतरफा रिपोर्ट को पुनः जांचने के निवेदन पर सरकार ने विचार नहीं किया।

आशीष बग्गा ने आगे कहा कि वर्किंग जर्नलिस्ट तथा अन्य समाचारपत्र कर्मचारी (सेवाओं की शर्तें) और विविध प्रोविजन एक्ट 1955 और मजीठिया वेज बोर्ड की सिफारिशों को चुनौती देने वाली कई याचिकाएं माननीय उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन हैं तथा सरकार का निर्णय उच्चतम न्यायालय के आदेश के अधीन होगा। सिफारिशों के प्रकाशित होने के बाद इन याचिकाओं में यदि जरूरी हुआ तो संशोधन होगा।"

(पंजाब केसरी, दिल्ली, 1 नवम्बर 2011)

वर्तमान समय में समाचार पत्र मालिकों की सोच उस लालची व्यवसायी की तरह कुंठित होती जा रही है जो अपने व्यवसाय से आने वाली पूरी रकम को सिर्फ अपनी बैलेंस शीट को बढ़ाने में प्रयोग करता है लेकिन अपने मूल आधार मानव संसाधन के वेतन और अन्य सुविधाओं पर खर्च को वह फालतू का खर्च मानने लगता है। वर्तमान समय में ऐसी स्थिति लगभग सभी प्रेस मालिकों की होती जा रही है।

अब ऐसे में एंटोनी का यह बयान कि सरकार जल्द ही इस सम्बंध में अपना फैसला सुनायेगी, ने मीडिया मालिकों की नींद हराम कर दी है। जहां एक ओर इससे समाचार पत्रों में कार्य करने वाले कर्मचारी खुश हुए है वहीं दूसरी ओर मालिक वर्ग में काफी गमगीन माहौल हो गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकार इन मीडिया मालिकों को नाखुश कर इस सिफारिश को वास्तव में लागू करेगी या यह सब सिर्फ चुनावी प्रोपगंडे के तहत इन कर्मचारियों को सिर्फ खुश करने का कोई नयी चाल मात्र है। अब हर मीडिया कर्मचारी बस इस बात की बाट जोह रहा है कि केंद्र सरकार का आने वाला फैसला किसके पाले में होगा?... ■

# युद्धाय कृतनिश्चयः

## आशुतोष

अन्ना की टोली ने एक बार फिर जंतर–मंतर पर अपनी ताकत दिखाई। अनशन से पहले ही सोशल मीडिया पर सक्रिय जमात ने ऑन–लाइन लामबंदी शुरू कर दी थी। अरब देशों में सोशल मीडिया की मार्फत आई क्रांति ने उसके हौंसलों को परवान चढ़ाया है।

दूसरी तरफ सरकार भी अन्ना से कम, सोशल मीडिया से ज्यादा हलकान है। वह जानती है कि अन्ना अड़ियल होने के बाद भी विनम्र हैं। गुस्सा उन्हें भी आता है पर वे भाषा का संयम नहीं छोड़ते। पर इस फेसबुकिये हुजूम का क्या किया जाय जो न उम्र का लिहाज करता है और न ओहदे का। बदमिजाजी और बदजुबानी तो उनकी तासीर में शामिल है।

सरकार समझ गयी कि यह सारा खेल सोशल मीडिया वालों का है। सरकार यह भी समझती है कि जो वह समझ रही है, वही सही है। उसे यह भी समझ है कि जो समझाने से न समझें उन्हें किस तरह समझाया जाय। सरकार के पंचरत्नों में से एक कपिल सिब्बल ने रामदेव प्रकरण में समझाने की कला का सार्वजनिक प्रदर्शन किया था और कोटरी की वाह–वाही बटोरी थी। सरकार ने इस बार सोशल मीडिया वालों को समझाने का जिम्मा भी सिब्बल पर डाल दिया। संयोग से यह उनका महकमा भी था इसलिये भी उनका इस पर हक बनता था।

जिम्मेदारी मिलते ही सिब्बल ने तमाम सोशल साइट ऑपरेटरों को तलब किया। हाजिर होने पर उन्हें तहजीब और तरीके से चलने की हिदायत दी। ऐसी कोई भी बात, जो 'सरकार' और सरकार की 'सरकार' के खिलाफ जाती हो, जा सकती हो, जाती न हो लेकिन जाती दिखती हो अथवा अपने रास्ते चलते–चलते पटरी बदल कर उस तरफ चल पड़ने की संभावना भी हो, सोशल मीडिया पर न चलायी जाये, न चलाने दी जाय।

सिब्बल के न्यौते को इन कंपनियों के कारिंदों ने रुटीन की चाय–पार्टी समझा था। नतीजतन वे बड़ी बेतकल्लुफी से सरकार के दफ्तर में जा पहुंचे। मातहतों ने उन्हें उसी तरह मुस्कान परोसी जैसे वे हर गोरी चमड़ी वाले को अपने ऑफिस में प्रवेश करते देख कर परोसते थे। सब कुछ सामान्य था। किन्तु मंत्री जी के दफ्तर में प्रवेश करते ही उनकी छठी इन्द्री गज–बजा उठी। सिब्बल ने हमेशा की तरह दरवाजे पर आ कर उनका स्वागत करने के बजाय कुर्सी में धंसे–धंसे ही आंखें तरेरी।

कंपनी कारिंदों के लिये उनकी यह अदा अजनबी थी। उनके हाथ में एक प्रिंटआउट था जिस पर एक विकृत सा नारी चित्र उकेरने की कोशिश की गयी थी। दूर से देखने पर यह कुछ–कुछ एम एफ हुसैन की उन कलाकृतियों की फूहड़ नकल लग रहा था जो उन्होंने हिन्दू देवियों के बारे में बनाये थे। हाँ, हाँ, ठीक है, अब गुस्सा छोड़ो ! वाली दृष्टि से लोगों ने मुस्कुराते हुए अनौपचारिक होने की कोशिश की लेकिन मंत्री जी सुनने के मूड में नहीं थे। एक गहरी सांस छोड़ते हुए सिब्बल ने कहा – यह नहीं चलेगा। तीन शब्दों का संक्षिप्त और गठा हुआ वाक्य। एक अक्षर भी कम करना संभव नहीं। नश्तर सी चुभती सर्द आवाज। बोझिल शब्द मानो टेबल के दूसरी तरफ से नहीं बल्कि दूर कहीं जनपथ से आ रहे हों। अब चौंकने की बारी थी। यह वही संचार भवन था जहां कुछ भी चलता था। राजा के जमाने में तो यहां सब कुछ चलता था। और अब बात एक चित्र के भी न चलने की हो रही थी। सिब्बल ने उन्हें तमाम उलाहने और लानत–मलामत देकर चलता कर दिया।

फटकार खा कर कंपनियों के कारकुन पिछले दरवाजे से इस खामोशी से निकले कि सबसे तेज मीडिया वालों को भी खबर न हुई। शूर्पणखा जिस तरह रावण के दरबार में विलाप करती पहुंची थी, उस तरह इन्हें जाने की जरूरत नहीं थी। टेक्नॉलॉजी का फायदा उठाते हुए उन्होंने अपने–अपने मालिकों को ऑन–लाइन दुहाई भेजी। दूसरी तरफ मालिकों के कम्प्यूटर में जैसे ही उनकी कटी हुई नाक डा. उनलोड हुई, मालिक बिफर उठे। चट से फोन उठाया और पट से हिलेरी माई से शिकायत कर दी। भक्तों की पुकार पर हिलेरी माई दौड़ी आयीं। उन्होंने न केवल इस प्रकार की क्षुद्रता को धिक्कारा बल्कि निजी कंपनियों को इस प्रकार की समस्याओं का तोड़ निकालने की जिम्मेदारी भी याद दिलायी।

इंटरनेट स्वतंत्रता पर हेग में आयोजित सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए जब उन्होंने व्यक्ति के ऑफलाइन और ऑनलाइन मानवाधिकारों की समानता का 'दर्शन' प्रस्तुत किया उस समय उनके चेहरे पर प्लेटो और इस शोर–गुल में संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्यक्ष की भी नींद टूटी और उन्होंने भी एक बयान झाड़ दिया।

इधर भारत में भी अनेक नेता और नेता टाइप के लोगों ने अपनी दुम खड़ी कर अंतरराष्ट्रीय संकेत ग्रहण किये और बयान हांकने शुरू कर दिये। सिब्बल इस सब से भड़कते, इससे पहले ही विनम्र प्रधानमंत्री ने उन्हें शांत करते हुए याद दिलाया कि अब मामला घरेलू नहीं बचा है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ भी घरेलू संस्थानों जैसा व्यवहार किया जाना शोभा नहीं देता। खास कर हिलेरी माई की सिफारिश के बाद तो मामला स्टाफ का हो गया है। हे वीर ! हे नरपुंगव ! अब अपनी तोप की नाल घुमाओ और दूजी मामले में फंस चुके चिदम्बरम का इस्तीफा मांग रहे विपक्ष पर गोलेबाजी शुरू कर दो। हमारे असली दुश्मन वे लोग हैं जो अन्ना को भड़काते हैं, रामदेव जिनकी बी टीम हैं, रविशंकर जिनकी सी टीम हैं, ३३ डी, ई और एफ टीम हैं, और देश की जनता जिनकी एक्स, वाई और जेड टीम है।

अपराधी तो वे हैं जो फेसबुक और गुगल पर इनका एजेन्डा लिख रहे हैं, हमारे विरुद्ध माहौल बना रहे हैं। हे महारथी ! तू इन सेवा प्रदाता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मासूमियत पर शक न कर। शिव खेड़ा के वचनों को स्मरण कर और महसूस कर कि आज चिदम्बरम पर हमला हो और तुझे नींद आ जाय तो समझ कि अगला नम्बर तेरा है। मैं तेरे लिये इसलिये चिंतित हूं कि तेरे बाद नंबर मेरा है। स्वामी के झोले में सबकी फाइलें हैं। इसलिये हे सिब्बल कुल शिरोमणि ! युद्धाय कृतनिश्चयः।

**ई–जर्नल के पूर्व अंक में आप व्यावहारिक पत्रकारिता से सम्बंध रखने वाले कुछ महत्वपूर्ण शब्दों से परिचित हुए थे। इस अंक में आप संचार अवधारणा से सम्बंधित कुछ प्रमुख अवधारणाओं से परिचित होंगे। यह शब्दावली आपको संचार प्रक्रिया की एक अंतदृष्टि प्रदान करेगी।**

1. **रेचन सिद्धांत–** मीडिया के इस सिद्धांत के अनुसार नकारात्मक और आदिम प्रवृत्तियों जैसे हिंसा तथा सेक्स को मीडिया में स्थान और समय मिलने पर उनके प्रति आकर्षण कम हो जाता है। मीडिया को बाजारु सिद्धांतो पर चलाने के पक्षधर लोग इस सिद्धांत का प्रयोग अपनी ढाल की तरह करते हैं। वह तर्क देते हैं कि नकारात्मक प्रवृत्तियों को अंतर्वस्तु में स्थान देने पर उनको बढ़ावा नहीं मिलता, बल्कि वह घटती हैं।

2. **उत्प्रेरण सिद्धांत–** मीडिया के इस सिद्धांत के अनुसार नकारात्मक और आदिम प्रवृत्तियों जैसे हिंसा तथा सेक्स को मीडिया में स्थान और समय मिलने पर उनके प्रति आकर्षण बढ़ जाता है। इस सिद्धांत के पक्षधर मीडिया के संवेदनशील विशेषज्ञ हैं, जो मीडिया का संचालन सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होते देखना चाहते हैं।

3. **अंधानुकरण–** इस सिद्धांत के अनुसार समाज का औसत आदमी मीडिया की अंतर्वस्तु के प्रति सुरक्षाविहीन होता है। वह मीडिया में प्रस्तुत मूल्यों और जीवनशैली का अंधानुकरण करता है।

4. **तादात्म्यीकरण–** इस सिद्धांत के अनुसार समाज का एक सीमित तबका मीडिया का अंधानुकरण नहीं करता। वह अपने परिवेश और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए मीडिया पोषित मूल्यों से संतुलन स्थापित करता है। इस तरह वह मीडिया का अंधानुकरण नहीं बल्कि उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। इस सिद्धांत की यह मान्यता है कि समाज के सीमित लोगों में मीडिया के नकारात्मक प्रभाव से बचने की क्षमता होती है।

5. **जनसमाज सिद्धांत–** इस सिद्धांत के अनुसार मीडिया समाज के सभी लोगों को एक सामान्य ढांचे में ढालने का प्रयास करता है। एक जीवनशैली और एक ही जीवनदर्शन को अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि मीडियाई प्रभाव वाले समाज में व्यक्ति मीडिया से सम्प्रेषित संदेशों के अत्यधिक दबाव में जीता है। इस तरह समाज में 'मौलिक चिंतन' के लिए स्थान कम हो जाता है।